बिना धर्म का जन चाहिए

अंजु चौधरी
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की

धर्म बांटते हैं धरती को बिना धर्म का जन चाहिए।
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

मंदिर मस्जिद गुरूद्वारे सब खड़े किए हैं
इन सबने बस अपने ही, मैं बड़े किए हैं
मिल बैठे, जिसमें शांति से, ऐसा एक भवन चाहिए।
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

धर्म बांटते हैं धरती को बिना धर्म का जन चाहिए।
सबकी पीड़ा समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

ढोंग रचाते प्रभु प्रेम का उपल सजाए जाते हैं
धूप–दीप दिखा, फिर छप्पन भोग, लगाए जाते हैं।
भाव भरा हो, प्रभु प्रेम का, ऐसा एक भजन चाहिए
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

धर्म बांटते हैं धरती को बिना धर्म का जन चाहिए।
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

धरती की ही संतानें, सब धरती को ही बांट रही
बैठी जिस तरू छाया में, उसको ही काट रही
मन सुमन खिलें हों जिसमें ऐसा एक चमन चाहिए
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए

धर्म बांटते हैं धरती को बिना धर्म का जन चाहिए।
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

माता कहते धरती को और नदियां माँ कहलाती हैं
दूषित करते जल थल वायु लाज ना इनको आती है
समझेंगे निज जिम्मेदारी, जन–जन से ऐसा वचन चाहिए

धर्म बांटते हैं धरती को बिना धर्म का जन चाहिए।
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।

शक्ति रूप में पूजते नारी, नारी पर ही बल दिखलाए जाते हैं
बहू चाहते पढ़ी–लिखी बेटी पर ही हर बंधन लगाए जाते हैं
बेटी पाए जहां स्वस्थ जीवन, ऐसा एक जन जागरण चाहिए

धर्म बांटते हैं धरती को बिना धर्म का जन चाहिए।
सबकी पीड़ा, समझे अपनी, ऐसा एक मन चाहिए।